जलवायु परिवर्तनः नुकसान की भरपाई कौन करेगा?

विनता विश्वनाथन

पिछले महीने वारसा में हुई जलवायु परिवर्तन चर्चाओं में युनाइटेड नेशन्स फ्रेमवर्क कंवेन्शन ऑन क्लाइमेट चेन्ज के 190 से ज़्यादा सदस्य देशों ने भाग लिया। 11 दिन लंबे सम्मेलन में हुई चर्चाएं मतभेद व उग्रता से परिपूर्ण थीं। एक मुख्य कारण यह मुद्दा था कि जलवायु परिवर्तन की वजह से हो रहे और होने वाले विभिन्न देशों के नुकसानों का खर्चा कौन उठाएगा। यह मुद्दा अत्यंत विवादपूर्ण है और विश्व जलवायु परिवर्तन के प्रभावों की एक विडंबना है - सबसे ज़्यादा नुकसान उन लोगों/देशों का होगा जिनका जलवायु परिवर्तन में सबसे कम योगदान रहा है। और इनमें से कई देश सबसे गरीब और विकासशील देशों में से हैं।

ग्लोबल वार्मिंग के कारण हो रहे जलवायु परिवर्तन को समझना आसान नहीं है। इसका एक कारण यह है कि पृथ्वी के करोड़ों सालों के इतिहास में इतनी मात्रा में और इतनी तेज़ी से तापमान कभी भी नहीं बढ़ा। तो हमारे सारे पूर्वानुमान ऐसी परिस्थितियों पर आधारित हैं जिनकी तुलना बीते हुए हालातों से नहीं की जा सकती है।

फिर भी वारसा सम्मेलन में शामिल देशों के बीच एक सहमति है कि जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव तो होंगे, लेकिन इस बात पर मतभेद हैं ये दुष्प्रभाव किस हद तक या किस मात्रा में होंगे। अगर शोधकर्ताओं और वैज्ञानिकों के सबसे भयंकर पूर्वानुमान सही निकले, तो ज़ाहिर है कि हमें कई सारी भारी दिक्कतों का सामना करना पड़ेगा।

एक समझ यह बनी है कि जलवायु परिवर्तन के कुछ दुष्प्रभाव तो तुरंत ही देखने को मिलेंगे। कुछ लोगों का मानना है कि विश्व के कई क्षेत्रों में हो रही कुछ घटनाएं (मसलन, पहले से अधिक संख्या में और ज़्यादा भयंकर आंधियां, चक्रवात, बारिश और तापमान में ज़बर्दस्त उतार-चढ़ाव आदि) ग्लोबल वार्मिंग की वजह से ही हो रही हैं।

कुछ दुष्प्रभाव ऐसे भी हैं जिनका अनुमान तो लगाया गया है लेकिन वे तुरन्त नहीं, भविष्य में धीरे-धीरे दिखेंगे और विनाशकारी साबित हो सकते हैं। इनमें से एक है समुद्र तल में इज़ाफा। अनुमान के मुताबिक कई देशों के समुद्र तटीय इलाके पानी के नीचे चले जाएंगे और महासागर के कुछ द्वीप तो डूब ही जाएंगे, बिलकुल खत्म हो जाएंगे। यह एक बहुत ही गंभीर समस्या है क्योंकि मॉरीशस जैसे कुछ देश, जो सिर्फ छोटे द्वीप हैं, उनके पास जाने के लिए कोई अन्य जगह नहीं हैं। बांग्लादेश जैसे कुछ देश हैं जहां दुनिया के सबसे गरीब लोग रहते हैं। इन देशों की बड़ी आबादी डेल्टा क्षेत्र में रहती है। इनकी हालत पहले से बहुत बदतर हो जाएगी।

तो कहां जाएंगे ये सब लोग? इनके रहन-सहन, खाने-पीने और आजीविका की ज़िम्मेदारी कौन लेगा? जो नुकसान उनका होगा, उसका हर्ज़ाना कौन भरेगा? 2010 में कुछ द्वीप देशों, जिन पर समुद्र के बढ़ते स्तर का सबसे ज़्यादा असर होगा, ने ये मुद्दे उठाए थे। अल्पतम-विकसित देशों की गोष्ठी ने यह मांग करने में उनका साथ दिया था। अन्य देश भी इस मांग से सहमत हैं और भारत उनमें से एक है। तो इस समय शुरू हुई थी 'लॉस एण्ड डैमेज' (नुकसान व भरपाई) पर चर्चा।

यह मुद्दा 'समायोजन' से अलग है। समायोजन में वे सब चीज़ें शामिल हैं जिन्हें विकासशील देशों को करना है। इनमें मूलभूत सुविधाओं का विकास, खेती-बाड़ी व ज़मीन के उपयोग में परिवर्तन इत्यादि शामिल हैं ताकि वे आने वाले दिनों में उग्र मौसमी घटनाओं की बढ़ती आवृत्ति को झेलने के लिए तैयार हो सकें। यानी उन्हें आने वाले संभावित परिदृश्य के लिए फेरबदल करना होगा और ये तैयारियां तो उन्हें खुद ही करनी होंगी। समृद्ध देश उनकी सहायता करने पर सहमत हुए हैं।

मतभेद तो तब आता है जब नुकसान व भरपाई की बात होती है। नुकसान व भरपाई की बातें उन दुष्प्रभावों को लेकर है जिनको रोकने या कम करने के लिए कोई भी कुछ नहीं कर सकता है, न गरीब देश, न अमीर देश। इन प्रभावों को न तो रोका जा सकता है, न टाला जा सकता है। यानी

यदि भविष्य में हम कार्बन डाइऑक्साइड या अन्य ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम कर दें तब भी ये दुष्प्रभाव तो होकर रहेंगे। यहां अमीर देश मदद करने से मुकर रहे हैं, जबकि ग्लोबल वार्मिंग में उनका प्रति व्यक्ति योगदान सबसे ज़्यादा है।

किसी भी मुद्दे को लेकर 195 देशों के बीच सहमति बना पाना आसान काम नहीं होता है। बहुत सारे विमर्श और बहस के बगैर तो ऐसे कामों को अंजाम नहीं दिया जा सकता। किसी भी निर्णय के लिए एक-एक शब्द पर घंटों-दिनों की बहस चल सकती है। और कुछ ऐसा ही हुआ वारसा में। वहां एक तरफ दांव पर था कुछ देशों का भविष्य, उनका अस्तित्व और दूसरी तरफ कुछ अमीर देशों का काफी सारा पैसा। जहां कुछ देश इन चर्चाओं से खाली हाथ लौटना नहीं चाह रहे थे, वहीं अमीर देश कोई भी ऐसे निर्णय में शामिल नहीं होना चाह रहे थे जिसकी वजह से आगे जाकर उनको बहुत नुकसान हो।

सम्मेलन के खत्म होने के 24 घंटे बाद तक बातचीत चलती रही और आखिर में नुकसान व भरपाई की प्रक्रिया पर थोड़ी-बहुत सहमति बनी। यह तय हुआ कि उन देशों की मदद के लिए पैसों का इंतज़ाम तो होना चाहिए जिनको जलवायु परिवर्तन के संभावित दुष्प्रभावों को सहना होगा। किन देशों को यह पैसा मिलेगा, कहां से यह पैसा आएगा, कितने पैसे दिए जाएंगे (इसका हिसाब कैसे किया जाएगा), इन सब बातों पर निर्णय 2015 में पैरिस में होने वाली चर्चाओं में होगा। और सारे देश इन मुद्दों पर सोच-विचार कर आएंगे।

वारसा में दो महत्वपूर्ण बातें हुई हैं - 195 देशों की सहमति है कि जलवायु परिवर्तन के कारण कुछ ऐसी घटनाएं घट सकती हैं जिनको हम टाल नहीं सकते, और इसका हर्जाना उन अमीर व विकसित देशों को भरना पड़ेगा जो ग्लोबल वार्मिंग के सबसे बड़े गुनहगार हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***